वेद-तत्त्व-मीमांसा

वेदोंकी नित्यता

नित्य-पदार्थ दो प्रकारके होते हैं। एक अपरिणामी-नित्य, जिसके स्वरूप अथवा गुणमें कोई परिवर्तन नहीं होता और दूसरा प्रवाह-नित्य, जो लाखों हेर-फेर होनेपर भी सदा रहता है। पहलेका उदाहरण परमात्मा है और दूसरेका उदाहरण प्रकृति अथवा जगत्। जगत् किसी-न-किसी रूपमें सर्वदा रहता है, चाहे उसमें लाखों हेर-फेर हुआ करे। सृष्टिके प्रारम्भमें भी वह प्रकृति अथवा परमाणुके रूपमें विद्यमान रहता है; अतएव वह प्रवाह-नित्य है। पर उसे अनित्य इसलिये कहते हैं कि उसका परिणाम होता है या वह प्रकृति अथवा परमाणुका कार्य है, पर कारण-रूपसे नित्य है।

वेद शब्दमय हैं। न्याय और वैशेषिकके मतमें शब्द कार्य तथा अनित्य हैं; किंतु वे भी मन्वन्तर अथवा युगान्तरमें गुरु-शिष्य-परम्परासे उनका पठन-पाठन स्वीकार कर उन्हें नित्य बना देते हैं। परमेश्वर प्रत्येक कल्पमें वेदोंको स्मरण कर उन्हींको प्रकटित करते हैं, वे वेद बनाते नहीं।

'ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥' (यजुर्वेद ३१। ७)

इस मन्त्रने वेदोंको ईश्वरकृत नहीं माना है, प्रत्युत उनको वेदोंका प्रादुर्भाव-कर्ता माना है। वे उनके द्वारा प्रकटित हुए, इसीसे ईश्वरकृत कहलाते हैं। जैसे ईश्वर नित्य हैं, वैसे ही उनके ज्ञान—वेद भी नित्य हैं। वेद शब्दका अर्थ ज्ञान है। जैसे माता-पिता अपनी संतानको शिक्षा देते हैं, वैसे ही जगत्के माता-पिता परमात्मा सृष्टिके आदिमें मनुष्योंको वैदिक शिक्षा प्रदान करते हैं, जिससे वे भलीभाँति अपनी जीवन-यात्राका निर्वाह कर सकें।

मीमांसाकार जैमिनि तथा व्याकरण-तत्त्वज्ञ पतञ्जलिने शब्दोंको नित्य सिद्ध करनेके लिये कई युक्तियाँ लिखी हैं। उनसे शब्दमय वेदोंकी नित्यता प्रतिपादित होती है। हम उनकी चर्चा न कर विद्वानोंका ध्यान फोनोग्राफ तथा रेडियोकी ओर आकृष्ट करते हैं, जिनके द्वारा दूसरोंके शब्द ज्यों-के-त्यों सुन लेनेपर किसीको यह संदेह नहीं हो सकता कि शब्द अनित्य हैं।

वेदोंमें स्थानों, मनुष्यों तथा नदियोंके नाम मिलते हैं, जिनका वर्णन वर्तमान भूगोल तथा इतिहासमें भी प्राप्त होता है। इससे वेद वर्तमान भूगोल-स्थान तथा ऐतिहासिक पुरुषोंके समयके बाद रचित हैं। अतः वे नित्य नहीं हो सकते, यह प्रश्न हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि वेदोंमें रूढिवाले शब्द नहीं, जिनके द्वारा स्थान, नदी तथा राज्य और ऋषिके नाम दिखाकर कोई उनकी नित्यताका खण्डन करे। वैदिक शब्द व्याकरण—निरुक्तके अनुसार सामान्य अर्थोंको कहते हैं—

'परं तु श्रुतिसामान्यम्।' (जैमिनिसूत्र १। १। ३१)

वेदोंमें लोक-प्रसिद्ध इतिहास अथवा भूगोलका वर्णन उपलब्ध नहीं होता। वे त्रिकाल-सिद्ध पदार्थ—ज्ञान तथा शिक्षाओंके भण्डार हैं। उनसे लोक-परलोक दोनोंका बोध होता है। वेदोंके वाच्य अर्थ तीनों कालोंमें एक समान होते हैं। उनमें कुछ परिवर्तन नहीं होता। लोग उनके ध्वनि-रूप अर्थोंसे इतिहास अथवा भविष्यत्कथाके अस्तित्वकी कल्पना करते हैं। उनसे नित्यताकी हानि नहीं होती। वेदाङ्ग, निरुक्त और व्याकरण उनके वाच्य अर्थ बतलाते हैं। उनमें कहीं इतिहास आदि नहीं है। ध्वनि-बलसे जो मन्त्रोंके विविध अर्थ प्रकाशित होते हैं, उनकी चर्चा निरुक्तकार यास्क महर्षिने **'इति याज्ञिकाः, इति ऐतिह्यम्'** इत्यादि रूपसे की है। वे अर्थ सर्वमान्य नहीं, किंतु यह ईश्वरीय ज्ञानका चमत्कार ही है कि एक ही शब्दमें कितने अर्थ भरे हुए हैं कि समय पाकर उनसे इतिहास-भूगोलका तत्त्व भी ज्ञात होता रहता है। वेद महत्त्वके ग्रन्थ हैं। जो ईश्वरको नहीं मानते, वे भी वेदोंको नित्य मानते हैं। उनका कहना है कि कोई निरपेक्ष विद्वान् वेदोंको किसीका बनाया हुआ नहीं कहते। वे पौरुषेय नहीं—

'न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्।'

(सांख्यसूत्र)

उपनिषदोंका सिद्धान्त है कि मनुष्य जिस प्रकार अपने श्वासोंको उत्पन्न नहीं करता, पर उसका स्वामी कहलाता है, वैसे ही ब्रह्म भी वेदोंकी अध्यक्षता करते

हैं; क्योंकि उनमें एक ब्रह्मकी ही विचारधारा है।

'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।' (बृहदारण्यक० २। ४। १०)

इसपर कुछ लोग संदेह करते हैं कि निराकार ब्रह्म शब्दरूपमें अपनी विचारधारा कैसे प्रकट करते हैं? यह बात बड़ी तुच्छ है। जिन्होंने निराकार होकर साकार जगत् बनाया, वे क्या नहीं कर सकते! योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षुने लिखा है कि परमात्मा कभी-कभी करुणामय शरीर धारण कर लेते हैं—

'अद्भुतशरीरो देवो भावग्राह्यः।'

(योगवार्तिक)

यदि वेद नित्य हैं तो ब्रह्म तथा ऋषि-महर्षियोंके नामसे उनकी प्रसिद्धि क्यों हुई? इस प्रश्नका उत्तर निरुक्त तथा मीमांसादर्शनने दिया है कि ऋषियोंने उनकी व्याख्या भी लोगोंको समझायी है; उनका प्रवचन भी किया है। यही कारण है कि लोग उनके नामसे वेदोंको प्रसिद्ध करते हैं—

'आख्या प्रवचनात्।'

(जैमिनिसूत्र १। १। ३०)

'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।'

(यास्क)

सृष्टिके आदिमें परमेश्वरने चारों वेद ब्रह्माको एवं एक-एक वेद अग्नि, वायु, रवि तथा अथर्वाको सिखलाया—

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।'

(श्वेताश्वतरोप० ६। १८)

'अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।'

(शतपथ)

'अथर्वाङ्गिरसः।'

(गोपथ)

यदि वे एक साथ चारोंकी शिक्षा ब्रह्माको नहीं देते तो लोग कह सकते थे कि वेदको अग्नि आदिने बनाया और भगवान्‌के नामसे प्रसिद्ध किया। जो वेद ब्रह्माको प्राप्त थे, वे ही अग्नि आदि महर्षियोंको मिले। इसीसे किसीको यह कहनेका अवसर नहीं मिल सकता कि उन्होंने ईश्वरके नामसे मनगढ़ंत बातें लोगोंको समझायीं। किसी-किसीका यह कहना है कि वेदोंके भिन्न-भिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी भाषा है, जिससे अनुमान करना पड़ता है कि वे विविध समयोंमें बनाये गये हैं। किंतु यह तर्क बड़ा तुच्छ है; क्योंकि एक ही सम्पादक अग्रलेख, टिप्पणी तथा समाचारोंकी भाषा भिन्न-भिन्न प्रकारकी अपने समाचार-पत्रमें रखता है। तब विद्यानिधि सर्वज्ञ ब्रह्म अपने ज्ञानको कठिन तथा सरल भाषामें क्यों नहीं प्रकाशित कर सकते! उनके लिये क्या दो-चार शैलियोंकी भाषाएँ प्रकट करना कठिन कार्य है?

सृष्टिके आदिमें कोई भाषा नहीं थी। इसलिये परमात्माने अपनी मनचाही बोलीमें शिक्षा दी, जो परमात्माकी भाषा देववाणी कहलाती है। उन्होंने उसीके द्वारा लोगोंको बोलना सिखलाया। माता-पिता अपने बच्चोंको पानी शब्दका उच्चारण करना बतलाते हैं। उन्होंने अशुद्ध उच्चारणके द्वारा अपभ्रंश भाषा उत्पन्न की। उसे शुद्ध कर जो बोलने लगे, वे अपनी भाषाको संस्कृत—सुधारी हुई कहते थे। सुधारी हुई भाषाके लिये संस्कृत शब्द वाल्मीकिजीकी रामायणके पहले किसी साहित्यमें नहीं मिलता। प्राचीन साहित्यमें वैदिक भाषा और विषय दोनोंके लिये वेद, छन्द तथा श्रुति शब्द व्यवहृत होते थे। लौकिक भाषाके लिये केवल भाषा (संस्कृत) शब्द प्रयुक्त होता था। लौकिक संस्कृतसे वेद-वाणीकी कई अंशोंमें एकता है; पर उनके व्याकरण, नियम और कोष भिन्न हैं—यद्यपि संस्कृतकी उत्पत्ति वेद-वाणीसे हुई है।

कुछ लोगोंकी यह आपत्ति है कि वेदकी नित्यता इसलिये सिद्ध नहीं होती कि वे त्रयी कहे जाते हैं; पर हैं चार। आरम्भमें वे तीन थे, पीछे वे चार हो गये। उनमें एक अवश्य नवीन होगा। उनकी दृष्टिमें अथर्ववेद नया ठहरता है; क्योंकि ऋक्, यजुः और साम इन्हींके नाम संस्कृत-साहित्यमें बार-बार मिलते हैं, अथर्वके नहीं। जो छन्दोबद्ध हैं उनका नाम ऋक् है; जो गाने योग्य हैं उन्हें साम कहते हैं और अवशिष्ट यजुः कहलाते हैं। अथर्वमें ऋक्, यजुः—ये दोनों मिलते हैं; उसमें साम भी है। इसलिये वह ऋक्, यजुः और साम-रूप हैं। वह उक्त नामोंसे प्रसिद्ध नहीं हुआ कि उसमें तीनोंका सामञ्जस्य हो गया है। तब कौन-सी विशेष संज्ञा उसे दी जाय। ऋक्, यजुः और सामवेद अपने प्रसिद्ध नामोंसे व्यवहृत होते हैं; क्योंकि उन नामोंके योग्य उनमें एक गुण विशेष रूपसे है—

'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।' 'गीतिषु साम।' 'शेषे यजुःशब्दः।' (जैमिनिसूत्र २। १। ३५—३७)

अर्थात् त्रयी कहनेसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारोंका बोध होता है और ये चारों ही नित्य हैं। इसमें संदेहका कोई अवसर नहीं है।

मनुजीने कहा है कि वेदोंसे सब कार्य सिद्ध होते हैं—'**सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।**'

ऐसे गौरवशाली लाभदायक वेदोंपर जनताकी श्रद्धा क्यों नहीं, जो उनके नित्यानित्यके विचारमें प्रवृत्त होती है?

उक्त वेदोंमें परा और अपरा विद्याओंकी चर्चा है। उनसे पदार्थविद्या और आत्मविद्या—दोनोंका ज्ञान होता है। उनके अर्थ समझनेके प्रधान साधन व्याकरण और निरुक्त हैं। शाकपूणि तथा और्णनाभ आदिके निरुक्त अब नहीं मिलते। इस समय जो भाष्य मिलते हैं, उनमें उपलब्ध यास्क-निरुक्तका विद्वानोंने भी पूरा आदर नहीं किया। उन्होंने गृह्यसूत्र तथा श्रौतसूत्रपर अपनी दृष्टि रखी। इससे उनके अर्थ केवल यज्ञपरक हो गये। वैदिक महत्त्व लुप्त हो गया। वेद सब विद्याओंकी जड़ है। वर्तमान भाष्य इस बातको सिद्ध नहीं कर सके। यदि विद्वन्मण्डली वैदिक साहित्यकी निरन्तर आलोचना करे तो अर्थशक्ति उन्हें पूर्व प्रतिष्ठा दिला सकती है। विदेशी विद्वान् नहीं चाहते कि वेदोंकी मर्यादा अक्षुण्ण रहे। उनकी रक्षा भारतीयोंको करनी चाहिये।

भारतीय महर्षि यास्ककी यह सम्मति याद रखें कि ईश्वरकी विद्या नित्य है, जो कर्तव्यशिक्षाके लिये वेदोंमें विद्यमान है—

'**पुरुषविद्याया नित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिमन्त्रो वेदे।**'

आशा है, पाठक यदि उपर्युक्त पंक्तियोंपर ध्यान देंगे तो वे वेदोंकी नित्यता स्वीकार करेंगे।

वेद कथाङ्क (कल्याण-वेदाङ्क)